डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

'उरतृप्त' उपनाम से साहित्य जगत में प्रसिद्ध डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा अपनी भावनाओं और विचारों को अत्यंत ईमानदारी और गहराई से अभिव्यक्त करते हैं। उनकी बहुमुखी प्रतिभा का प्रमाण उनके लेखन के विभिन्न क्षेत्रों में उनके योगदान से मिलता है। वे न केवल एक प्रसिद्ध व्यंग्यकार हैं, बल्कि एक कवि, संस्मरणकार और बाल साहित्य लेखक भी हैं। उनके व्यंग्य लेखन ने उन्हें एक विशेष पहचान दिलाई है। उनका व्यंग्य 'शिक्षक की मौत' साहित्य आजतक चैनल पर अत्यधिक वायरल हुआ, जिसे लगभग दस लाख से अधिक बार पढ़ा और देखा गया, जो हिंदी व्यंग्य के इतिहास में एक अभूतपूर्व कीर्तिमान है। उनका व्यंग्य-संग्रह 'एक तिनका इक्यावन आँखें' भी काफी प्रसिद्ध है, जिसमें उनकी कालजयी रचना 'किताबों की अंतिम यात्रा' शामिल है। इसके अतिरिक्त 'म्यान एक, तलवार अनेक', 'गपोड़ी अड्डा', 'सब रंग में मेरे रंग' भी उनके प्रसिद्ध व्यंग्य संग्रह हैं। 'इधर-उधर के बीच में' तीसरी दुनिया को लेकर लिखा गया अपनी तरह का पहला और अनोखा व्यंग्य उपन्यास है। साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदान को तेलंगाना हिंदी अकादमी, तेलंगाना सरकार द्वारा श्रेष्ठ नवयुवा रचनाकार सम्मान, 2021 मुख्यमंत्री के. चंद्रशेखर राव के हाथों से सम्मानित किया गया है। राजस्थान बाल साहित्य अकादमी के द्वारा (मुख्यमंत्री अशोक गहलोत के करकमलों से) उनकी बाल साहित्य पुस्तक 'नन्हों का सृजन आसमान' के लिए उन्हें सम्मानित किया गया है। इनके अलावा, उन्हें व्यंग्य यात्रा रवींद्रनाथ त्यागी सोपान सम्मान और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के हाथों साहित्य सृजन सम्मान भी प्राप्त हो चुका है। डा. उरतृप्त ने तेलंगाना सरकार के लिए प्राथमिक स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर पर कुल 55 पुस्तकों को लिखने, संपादन करने और समन्वय करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । उरतृप्त ने अब तक नौ व्यंग्य संग्रह, पाँच कहानी संग्रह, पाँच कविता संग्रह, दो उपन्यास लिख चुके हैं। बिहार, छत्तीसगढ़, तेलंगाना की विश्वविद्यालयी पाठ्य पुस्तकों में उनके योगदान को रेखांकित किया गया है। कई पाठ्यक्रमों में उनकी व्यंग्य रचनाओं को स्थान दिया गया है। उनका यह सम्मान दर्शाता है कि युवा पाठक गुणवत्तापूर्ण और प्रभावी लेखन की पहचान कर सकते हैं।

V.P. Publishers & Distributors
W-2, 862 Basant Vihar, Naubasta
Kanpur - 208021

₹399/-
ISBN : 978-93-84120-62-7
9 789384 120627

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

समय की रेत पर इंदौरी यादें ■ डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

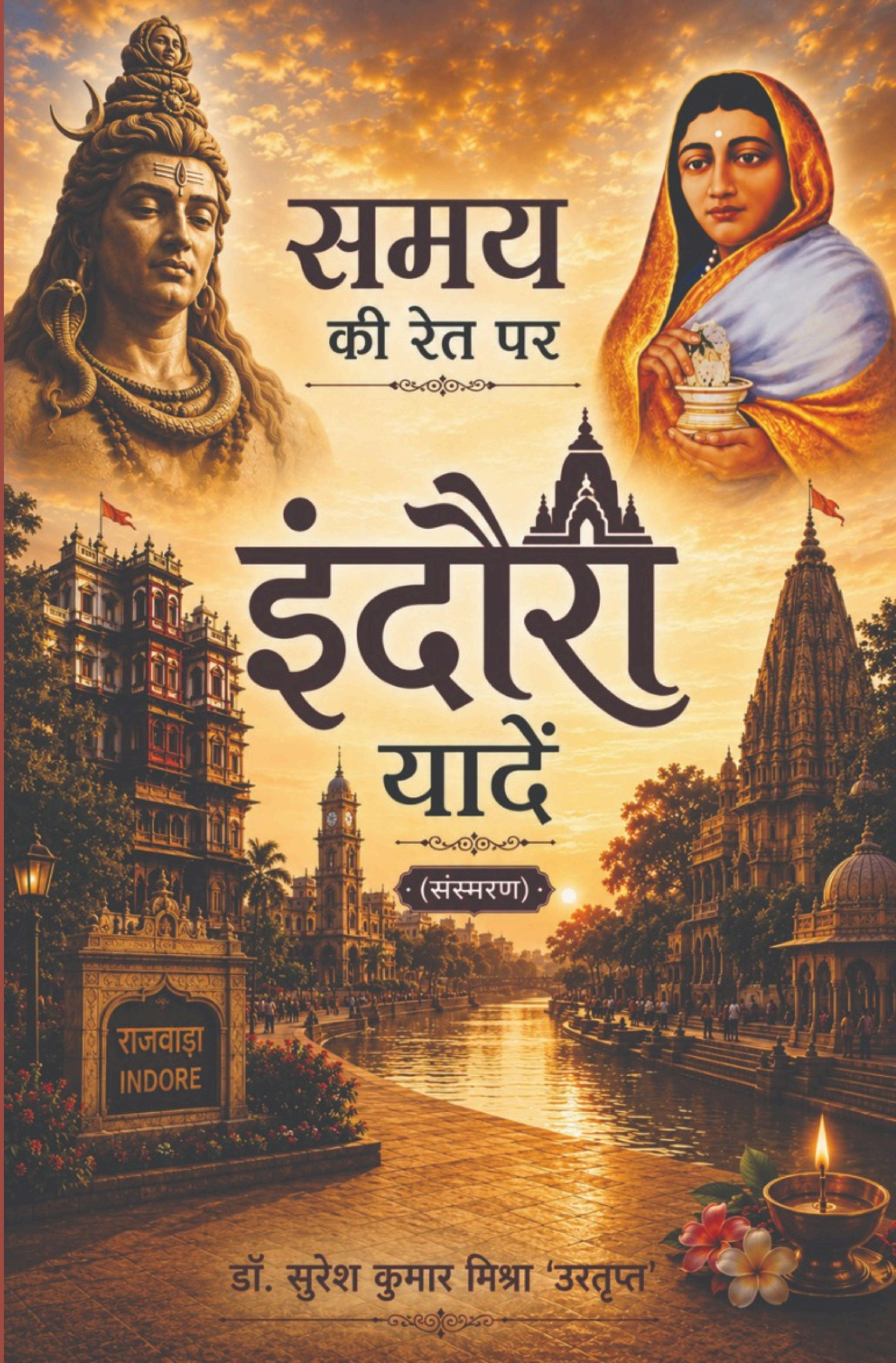

समय की रेत पर

इंदौरी यादें

(संस्मरण)

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

समय की रेत पर इंदौरी यादें

डॉ० सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

V.P. Publishers & Distributors
W-2, 862 Basant Vihar, Naubasta
Kanpur - 208021

ISBN : 978-93-84120-62-7

प्रथम संस्करण : 27 जुलाई, 2025

पुस्तक

समय की रेत पर इंदौरी यादें

डॉ० सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

प्रकाशक

वी.पी. पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

डब्लू–2, 862 बसंत विहार, नौबस्ता

कानपुर – 208021,

कॉपीराइट © डॉ० सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

मूल्य : 399/-

शब्द-सज्जा

रुद्र ग्राफिक्स, हनुमन्त विहार, नौबस्ता, कानपुर–21

मुद्रक

सार्थक प्रेस, कानपुर

समय की रेत पर इन्दौरी यादें

एक साल का वह समय
सिर्फ़ कैलेंडर का पन्ना नहीं था,
वह मेरी ही चेतना का विस्तार था
जो अब इंदौर की माटी में विलीन है,
मैं लौट आया हूँ वापस हैदराबाद,
पर यह लौटना तो महज़ एक छलावा है,
यहाँ तो सिर्फ़ हाड़–मांस का ढाँचा खड़ा है,
मूल वजूद तो वहीं की गलियों में छूट गया,
जब जागती है राजबाड़े की वह ढलती शाम,
तो शून्य में टकटकी लगाए इस मन में,
अचानक एक जानलेवा हुक उठती है,
दर्शन कहता है कि जो बीत गया वह सत्य नहीं,
पर इस तड़पते दिल को कौन समझाए?
छप्पन दुकान का वह कोलाहल, सराफ़े की रातें,
अब इस महानगर के एकांत में डसती हैं,
जैसे ही छूती है मन को वहाँ के अपनत्व की गंध,
भीतर एक मूक, अगाध पीड़ा उठती है,
मनुष्य कितना विवश है,
जहाँ रहना चाहता है, वहाँ ठहर नहीं पाता!
स्मृतियों का यह महासागर, यह विछोह,
अक्सर मुझे बंद कमरों में रुला देता है,
सब कुछ खो देने का यह शाश्वत भय
अब रह–रहकर मुझे भीतर तक डरा देता है,
कि क्या हम केवल छूट जाने के लिए ही मिलते हैं?
सत्य तो यही है कि समय की नदी में,
कोई भी मनुष्य अपने घाट पर दोबारा लौट नहीं पाता,
मैं यहाँ अपनी ही परछाईं को ढो रहा हूँ,
क्योंकि मेरा जो सबसे पवित्र, निश्छल अंश था,
वह तो वहीं ठहर गया है हमेशा के लिए,
इंदौर की आब–ओ–हवा में साँस लेता हुआ।

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

आशीर्वचन

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता महान साहित्यकार विनोद कुमार शुक्ल जी के साथ 'समय की रेत पर इंदौरी यादें' (संस्मरण) के लेखक डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'।

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त' देश के सबसे चमकते हुए साहित्यकार हैं। उन्होंने इंदौर में एक मास के प्रवास के दौरान जो अनुभव किया, उसे संस्मरण के रूप में लिखा। उनकी लेखनी में इंदौर की गलियों की गंध है, बरसात की भीगी छतों की स्मृति है। जब वे संस्मरण लिखते हैं, तो शब्दों में शहर की धड़कन उतर आती है। एक बार जो इन्हें पढ़ ले, वह इंदौर से प्रेम करने लगता है, जैसे कोई अनजाना अपना हो गया हो। उनकी भाषा में धीमी रोशनी है, जो पाठक के मन में देर तक जलती रहती है। यह आशीर्वचन उनके लिए है, कि वे और लिखें, और फैलाएँ और हमें उस प्रेम में बाँधें जो साहित्य ही दे सकता है।

विनोद कुमार शुक्ल

अपनी बात

साहित्य की दुनिया में शब्द तो बहुत से लोग बुनते हैं लेकिन कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो कागज़ पर उतरने से पहले आत्मा की भट्टी में तपकर कुंदन बनते हैं। यह कृति 'समय की रेत पर इंदौरी यादें' मेरे जीवन के उस कालखंड की जीवंत इबारत है जब नियति ने मुझे हैदराबाद की उस जानी पहचानी, मशीनी और दक्खिनी दुनिया से उखाड़कर मालवा की इस पावन और सोंधी गोद में ला पटका था। वर्ष 2017 की वह अलसायी सुबह आज भी मेरी बंद आँखों के पीछे किसी ताज़ा कैनवास पर उकेरी गई पेंटिंग की तरह सुरक्षित है जिसने मेरे भीतर के अकेलेपन और एक अजनबी शहर के द्वंद्व को सरेआम उजागर कर दिया था।

इस संस्मरण की सबसे बड़ी पूंजी और मेरी साहित्यिक यात्रा का सर्वोच्च वरदान यह है कि मैं परम आदरणीय और हिंदी साहित्य के शीर्ष पुरुष श्री विनोद कुमार शुक्ल जी को अपना साहित्यिक गुरु मानता हूँ। वर्ष 2017 और 2018 में, जब इस संस्मरण के शुरुआती पन्ने आकार ले रहे थे और मैंने इन स्मृतियों को अपने कंप्यूटर की एक साधारण फ़ाइल में सहेजना शुरू किया था, तब मैंने अत्यंत संकोच और अगाध श्रद्धा के साथ इसके कुछ अंश गुरुदेव के सम्मुख रखे थे। शब्दों के उस अद्भुत चितेरे, उस महान कथाशिल्पी ने जब इन पन्नों को अपनी पारखी दृष्टि से पढ़ा, तो उनके होंठों पर एक गहरी, संतोषभरी मुस्कान तैर गई। उन्होंने मेरी पीठ थपथपाते हुए जो शब्द कहे, वे आज भी मेरी आत्मा में किसी दिव्य शंखध्वनि की तरह गूँजते हैं। उन्होंने अत्यंत भावुक लहजे में कहा था, "सुरेश, जिस आत्मीय लय, निश्छल संवाद और ठेठ मानवीय संवेदना के साथ तुमने इंदौर के इस मिजाज को कागज़ पर उतारा है, वह अद्भुत है। यह केवल एक शहर का संस्मरण नहीं, बल्कि एक प्रवासी की रूह का आत्म साक्षात्कार है। जिस तरह तुमने लिखा है, यह संस्मरण अवश्य छपना चाहिए और देश के कोने कोने तक पहुँचना चाहिए। इसमें मालवा का केवल भूगोल नहीं, बल्कि इंसानी जज्बातों का एक पूरा इतिहास धड़क रहा है।"

गुरुदेव की वही अमर वाणी इस पुस्तक की रूह बनकर इसमें प्रवाहित हो रही है। एक संस्मरणकार के रूप में मैंने यहाँ किसी सीधे उपदेश, नीरस व्याख्यान या बनावटी आदर्शवाद का मुखौटा नहीं पहना है। संस्मरण विधा की पहली और अनिवार्य शर्त होती है, प्रामाणिकता और तटस्थता का विसर्जन। इस संस्मरण की

सबसे बड़ी विशेषता इसका सहज संवादपरक, बिंबात्मक और संतुलित संस्मरणात्मक ढंग है। मैंने इंदौर के चरित्र को किसी दूर खड़े दर्शक की तरह नहीं, बल्कि उसके सामूहिक उत्सव का एक हिस्सा बनकर जिया है।

इस संस्मरण के सभी पात्र, चाहे वह ऑटो चलाने वाला कान्हा हो, कड़े नियमों वाले मकान मालिक जोशी जी हों, पोहे वाले आनंद भाई हों, पान चबाने वाले और आधी रात को मेरे बुखार में सिर पर ठंडे पानी की पट्टियाँ रखने वाले पड़ोसी राकेश भिया हों, कंजूस मगर भावुक भाईसाहब हों, पलासिया के फुटपाथ पर कबीर ग्रंथावली सहेजने वाले शास्त्री जी हों या रालामंडल का वो फॉरेस्ट गार्ड मंगतू राम हो,या मेरा जिगरी दोस्त शेखर हो, ये सब हाड़ मांस के बने जीवित इंसान हैं। इनमें सहज मानवीय दोष, लापरवाहियाँ और त्रुटियाँ कूट–कूट कर भरी हैं। कोई बड़बोला है, कोई काम टालने वाला है, तो कोई जरूरत से ज्यादा सख्त है। लेकिन इन दोषों के ठीक पीछे जो निश्छल आत्मीयता का रस बहता है, वही इस विधा का मर्मस्पर्शी सच है। पूर्णता एक भ्रम है, असली सुंदरता तो हमारी अधूरी और कमियों से भरी इंसानी फितरत में ही छिपी होती है और यही इस कृति की मूल संवेदना है। यह संस्मरण इस सत्य को पूरी तरह स्थापित करता है कि इंदौर सिर्फ देश का एक व्यावसायिक या स्वच्छ शहर नहीं है, यह तो संपूर्ण ब्रह्मांड में जिंदगी को उसके सबसे खूबसूरत, सोंधे रूप में जीने का एक जीवंत रंगमंच है।

इंदौर का महत्व इस बात में है कि यहाँ इतिहास और आधुनिकता दोनों हाथ मिलाकर सड़कों पर सरेआम नाचते हैं। यहाँ सुबह की शुरुआत केवल नींद टूटने से नहीं, बल्कि कोहरे की चादर में लिपटे आनंद भाई के पोहे जलेबी के स्वाद और स्वच्छता के प्रति लोगों के जुनूनी और अदम्य संस्कार से होती है। जो शहर दिन में करोड़ों का व्यापार करता है, वही रात के ग्यारह बजते ही सराफा और छप्पन दुकान के रूप में एक जिंदादिल आशिक बनकर स्वाद और आत्मीयता का ऐसा जादुई दृश्य बिखेर देता है जहाँ अजनबी लोगों से कंधे टकराने पर भी झगड़ा नहीं, बल्कि जनम–जनम का अपनापन जन्म लेता है।

यशवंत निवास रोड के सावन की वह हरी सुरंग, सिरपुर तालाब पर साइबेरियाई परिंदों के बहाने जीवन का शाश्वत सत्य सिखाने वाला वह गुमनाम मछुआरा, और भँवरकुआँ के स्टूडेंट हब में दो नंबर से असफल हुए राहुल को कबीर के प्रसंग से ढाँढस बंधाती वह मानवीय चेतना, यह सब मिलकर इस बात की गवाही देते हैं कि इंदौर में जो एक बार आ गया, वह फिर कहीं का नहीं रहता।

यह संस्मरण विदाई के उस तीखे, असहनीय दर्द, आँखों से बहते गर्म

आंसुओं और सीने से निकलती दर्दभरी आह की पोटली है, जिसके ठीक भीतर से कृतज्ञता की एक गजब की वाह फूटती है। यह कृति किसी कल्पना की बैसाखी पर नहीं, बल्कि इंदौर की उस पवित्र माटी के आचमन पर टिकी है जो रोने वाले को भी हंसना सिखा देती है। शब्दों की यह रूहानी और संवेदनशील यात्रा अपनी पहली ही पंक्ति से पाठक को अपनी आगोश में लेने का प्रयास करती है। मैं अंत में उन सभी लोगों का धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने मुझमें इंदौर बसाने की कोशिश की। विशेषकर मेरी दीदी समान डॉ. संध्या सिलावट जी का उपकार मैं कभी नहीं भूल सकता। उन्हें मैं विशेष धन्यवाद देता हूँ।

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

अनुक्रमणिका

1. चारमीनार के साए से अहिल्या की गोद तकः एक अलसायी भोर का 'भिया' राग
अरे भिया कहाँ चलना है? दक्खिनी मुसाफ़िर का इंदूरी स्वागत 11
2. पीतल की चाबी, कोरी दीवारें और टपरी से आती तन्हाई की खुशबू
इंदूर की हवा ठंडी, जोशी जी के कायदे गर्म! 16
3. उजला कोहरा, पीले पोहे की भाप और स्वच्छता का संस्कार
अरे बड़े, आनंद लो ने यार! माई की कृपा और पोहे का जीरावन 21
4. तपता हुआ मई, स्वच्छ भारत का शंखनाद और राजवाड़ा के वो दो आँसू
छा गया अपना इंदूर! नंबर वन की बेफिक्र जलेबी 27
5. छप्पन की चटनी, सराफा की मखमली रात और रसीले जलेबे का वात्सल्य
भिया संभलकर ने यार, जलेबी गिर जाएगी! सराफा का रंगमंच 30
6. क्लॉथ मार्केट की संकरी गलियाँ, लाल बही–खाता और मिश्रीलाल का गल्ला
रोकड़ा चलता है नी! मिश्रीलाल भाईसाहब की कड़क मलाई 35
7. भँवरकुआँ का महाकुंभः दो नंबर की लाचारी और कबीर का हुनर
लखन भिया की केतली और राहुल बड़े की कुर्सी 40
8. मटमैले बादलों का कैनवास और क्रिकेट का ज्वालामुखी
अरे खाओ ने जोशी जी! क्रिकेट का मुकाबला और मुफ्त के समोसे 45
9. रालामंडल की पगडंडियाँ, मंगतू राम की पोटली और मक्के की रोटी का अध्यात्म
अकल घास चरने गई क्या बड़े? रालामंडल का खाकी पहरा 51
10. फटी जेब में रेंगते सपनेः पलासिया की बस और 'दुआओं का कोई मीटर नहीं'
मालवा की बस में दिल बड़ा होना चाहिए, जगह तो बन जाती है! 56
11. शब–ए–मालवा का तिलस्म, छत का सन्नाटा और धुंधला होता 'घर'
क्यों भिया, आज बड़े लेट हो गए यार? शब–ए–मालवा का सजदा 61
12. यशवंत निवास रोड की हरी सुरंग, सावन की रिमझिम और टूटी छतरी का मुक्त गान
काहे को इतनी अकल लड़ा रहे हो भिया, इंदौर है ये, यहाँ भागने का नहीं, ठहरने का! 67
13. सिरपुर तालाब की जलराशि, साइबेरियाई परिंदे और मछुआरे का बीड़ी दर्शन
तुम तुम्हारा काम करो ने यार! सिरपुर के प्रवासी परिंदे 72

14. अनंत चौदस की रात और मेरा यार शेखर
अरे भिया, लोड नहीं लेने का! 78
15. पलासिया का बरगद, शास्त्री जी का तिरपाल और पीली पड़ चुकी डायरी
तुम तुम्हारी मोमबत्ती संभालो ने यार, दुनिया का क्या है! 86
16. मेघदूत उपवन के फव्वारे, दीनानाथ जी की लाठी और सूनी बेंच का सत्य
देख के नहीं चल सकता क्या नी? मेघदूत की जामुनी छाँव 92
17. बीजासन की टेकरी, बाणेश्वर का राज और कंक्रीट के पीछे छिपी सनातन रूह
लिख के रख लो तुम! बीजासन टेकरी का आध्यात्मिक गल्ला 95
18. यशवंत रोड का मद्धम उजाला और हृदय की कोमल छटपटाहट
अरे भिया, बुरा मत मानो यार! माई के दर्शन का उतावलापन 99
19. लाल कत्थई दाग, खजराना का बुलावा और संकोच का खुलता वितान
संडे को दफ्तर का काम? काहे को खून का पानी कर रहे हो बड़े! 103
20. पितृपर्व की मटमैली धूप और रिश्तों की सूनी पगडंडियाँ
अरे छोटे देख के चलो ने! बुजुर्गवार लाठी का हठी मिजाज 111
21. छप्पन भोग के समानांतरः एक मुसाफ़िर की फटी हुई डायरी
शक्कर का नाप भूल गए क्या बड़े? गल्ले की वो कड़क डांट 117
22. मंगल गीतों की गूँज और मालवा की माटी में रची पहेली
अरे ओ कालिया! लस्सी में मलाई थोड़ी कम डाला कर नी! 119
23. कतरनें यादों कीः जब तकनीक के आगे इंसानियत नतमस्तक हुई
मोबाइल का बारकोड नाटक है भिया, यहाँ तो रोकड़ा मांगते! 124
24. लाल चमड़े का वो आखिरी पन्ना और गद्दों से उड़ती गर्द
अरे बड़े! कबाड़ा छोड़ो और सीधे ओटले पे आ जाओ ने! 130
25. इंदौर की पारंपरिक गेर, वैश्विक धरोहर, हमारी शान
हवा में उड़ते हुए उस केसरिया, कसुमल और जादुई गुलाल 136
26. कड़क अदरक का सम्मोहन और सीढ़ियों पर बजती नन्हीं चाप
इंदौर में नाम से ज्यादा चाय के कुल्हड़ चलते हैं भिया! 142
27. चमेली की भीगी पत्तियाँ और कबीर ग्रंथावली का मर्म
रात को नौ बजे किवाड़ बंद करने का कायदा भूल गए क्या नी? 148
28. त्रिशंकु का प्रवासी मन और आधी रात का जलता बल्ब
अरे भिया बैठो ने इधर! आधे में तुम, आधे में हम! 152
29. विदाई का अग्रिम अश्रु और ठहरते हुए कालचक्र का अजगर
कल सुबह फिर लाइब्रेरी बैठना है बड़े, ऐसे कैसे हार मान जाएँ! 157
30. दुआओं का अनंत अंबरः विदा ले रहे कदम और अमर होती मुस्कान
दुआओं का कोई मीटर नहीं होता भिया, खाओ ने आनंद से! 167

1

चारमीनार के साए से अहिल्या की गोद तकः एक अलसायी भोर का 'भिया' राग

अरे भिया कहाँ चलना है? दक्खिनी मुसाफ़िर का इंदूरी स्वागत

वर्ष 2017 की वह अलसायी हुई सुबह आज भी मेरी बंद आँखों के पीछे किसी ताज़ा कैनवास पर उकेरी गई पेंटिंग की तरह सुरक्षित है। जब एक साल के प्रोजेक्ट के सिलसिले में इंदौर जाने की बात पक्की हुई थी, तो मन में एक अजीब सी दुविधा ने जनम लिया था। हैदराबाद की उस जानी–पहचानी जिंदगी, चारमीनार के साए वाली सड़कों, हुसैन सागर के किनारे शाम की मद्धम हवा और वहाँ की मीठी दक्खिनी बोली को छोड़कर मालवा की इस अनजान गोद में आना कैसा रहेगा, यह सवाल मुझे भीतर ही भीतर मथ रहा था। लेकिन जिंदगी जब आपको किसी नए रास्ते पर धकेलती है, तो अपने साथ कुछ नए रंग और कुछ अनछुए अहसास भी लाती है। सो, सूटकेस में कुछ जोड़ी कपड़े, अपनी पसंदीदा किताबें, लिखने के लिए एक पीली डायरी और ढेर सारी आशंकाएं समेटकर मैं निकल पड़ा था।

सफ़र रात भर का था। बस की खिड़की से छनकर आती ठंडी हवा के झोंके बार–बार मेरी नींद को तोड़ रहे थे और मुझे हैदराबाद के उस छूटे हुए आशियाने की याद दिला रहे थे। नीली रातों के उस लंबे सफर में पहियों की घड़घड़ाहट के बीच मैं बस यही सोच रहा था कि एक नए शहर में शून्य से शुरुआत करना कितना कठिन होता है। अजनबी चेहरे, अनजानी सड़कें और एक बिल्कुल अलग संस्कृति। सुबह की पहली किरण जब आसमान की लाली को चीरकर बाहर निकली, तब हमारी बस ने इंदौर की सीमा में प्रवेश किया। जैसे ही मैंने बस के पायदान से उतरकर अहिल्या नगरी की इस पावन जमीं पर अपना पहला कदम रखा, मुझे महसूस हुआ कि यहाँ की हवा का मिजाज ही बिलकुल जुदा है।

हवा में एक अजीब सी खटास और मिठास का ऐसा अनोखा मिश्रण घुला था जो देश के किसी और कोने में नहीं मिल सकता था। वह खटास बस स्टैंड के उस चिर–परिचित शोर, हॉर्न की कर्कश आवाजों, चाय के गिलासों की खनक

और गाड़ियों के काले धुएं की थी, जबकि मिठास यहाँ की मिट्टी और लोगों की सांसों में रची–बसी थी। चारों तरफ एक अजीब सी चहल–पहल थी, लेकिन उस आपाधापी में भी एक ठहराव था जो केवल मालवा की तासीर में ही हो सकता है।

मैं अभी बस स्टैंड की उस अजनबी आपाधापी को समझने की कोशिश ही कर रहा था कि तभी कंधे पर लटका बैग थोड़ा और भारी लगने लगा। सफर की थकान का एक लंबा साया मेरी रीढ़ की हड्डी में धीरे–धीरे उतर रहा था। आँखों में नींद की खुमारी थी और चेहरे पर एक अजीब सा संकोच। मैंने जेब से रूमाल निकाला और माथे पर जमी सफर की धूल को पोंछने लगा। ठीक उसी पल, मेरे ठीक सामने एक तिपहिया ऑटो आकर रुका। ऑटो का रंग पीला और काला था, लेकिन उसके आगे के कांच पर बड़े–बड़े अक्षरों में लिखा था महाकाल की कृपा। उस गाड़ी का ढांचा भले ही पुराना था, लेकिन उसकी चमक गवाही दे रही थी कि उसका मालिक उसे अपनी जान से ज्यादा चाहता है।

ऑटो वाले ने अपनी दाईं आँख को थोड़ा सिकोड़ते हुए, चेहरे पर एक ऐसी बेफिक्र और सच्ची मुस्कान बिखेरी जो सिर्फ इसी शहर की बपौती हो सकती थी। उसकी उम्र कोई पैंतीस–चालीस के आस–पास रही होगी। साधारण सा कुर्ता, गले में लिपटा हुआ मैला सा गमछा और आँखों में एक ऐसी आत्मीयता जिसे देखकर कोई भी कह दे कि यह बंदा दिल का बुरा नहीं हो सकता। उसने सिर पर बंधी गमछी को थोड़ा पीछे खिसकाया, अपनी सीट पर थोड़ा आगे की तरफ खिसका और बेहद आत्मीय स्वर में मुझसे पूछा कि भिया कहाँ चलना है।

वह भिया शब्द जब पहली बार मेरे कानों के परदे से टकराया, तो मुझे लगा कि जैसे सदियों पुराना कोई अजनबी कोहरा पल भर में छंट गया हो। हैदराबाद में जहाँ अमूमन लोग औपचारिकता में खोए रहते हैं, बात–बात पर साहब या सर कहकर एक ऐसी दूरी बना लेते हैं जिसे पार करना मुमकिन नहीं होता, वहीं इस छोटे से शब्द ने जैसे झटके में मुझे पराया मानने से साफ़ मना कर दिया। उसमें कोई दिखावा नहीं था, कोई बनावट नहीं थी। ऐसा लगा जैसे मैं किसी बेगाने शहर में नहीं आया हूँ, बल्कि अपने ही किसी बड़े या छोटे भाई के सामने खड़ा हूँ जो सुबह–सुबह स्टेशन पर मेरा इंतजार कर रहा था। उस एक शब्द ने मेरे भीतर के सारे संकोच, सारे डर और सारी हिचकिचाहट को पिघलाकर रख दिया।

मैंने मुस्कुराते हुए कहा कि मुझे राजवाड़ा की तरफ जाना है, वहाँ पास में ही मेरे ठहरने का इंतजाम है। क्या आप चलेंगे।

ऑटो वाले ने तुरंत अपनी गाड़ी का मीटर नीचे गिराया, जो इस बात का सबूत था कि यहाँ ईमानदारी अभी जिंदा है। उसने एक जोरदार ठहाका लगाया और बोला कि अरे भिया, कैसी बात करते हो यार। राजवाड़ा जाने के लिए कोई

मना करता है क्या। राजवाड़ा बोले तो अपने इंदौर का दिल है भिया। अपनी अहिल्या माई का राजपाट रहा है वहाँ। आप तो सीधे बैठ जाओ पीछे। सामान इधर रख दो बीच में। चलो, आपको ऐसी सैर कराते हुए ले चलेंगे कि रात भर का ये जो सफर का ढिंडोरा है ने, ये सब भूल जाओगे।

मैं चुपचाप पीछे की सीट पर बैठ गया। जैसे ही ऑटो स्टार्ट हुआ, एक झटका लगा और शहर की सड़कों पर हमारा सफर शुरू हो गया। सुबह की मद्धम धूप अब धीरे–धीरे सड़कों पर बिखरने लगी थी। इंदौर अपनी नींद से जाग रहा था, लेकिन उसकी इस जागृति में दिल्ली या मुंबई जैसी कोई अंधी दौड़ नहीं थी। यहाँ की सुबह में एक तसल्ली थी। दुकानों के शटर धीरे–धीरे ऊपर उठ रहे थे और उनके भीतर से अगरबत्ती का धुआं निकलकर सड़क तक आ रहा था। सबसे दिलचस्प नजारा तो उन दुकानों का था जहाँ पोहे और जलेबी की कड़ाही चढ़ चुकी थी। सफ़ेद धुंआ हवा में तैर रहा था और उसकी खुशबू सीधे भूख को जगा रही थी। रास्तों के किनारे लगे नीम और पीपल के पेड़ों की पत्तियाँ सुबह की ओस से नहाकर ऐसे चमक रही थीं मानो किसी ने उन पर कांच बिखेर दिया हो।

मैंने देखा कि यहाँ की सड़कों पर गाड़ियाँ तो दौड़ रही थीं, लेकिन उनमें कोई घबराहट नहीं थी। लोग स्कूटर पर जाते हुए भी एक–दूसरे को देखकर हाथ हिला रहे थे, मुस्कुरा रहे थे, मानों पूरा शहर एक ही मोहल्ले का हिस्सा हो। ऑटो वाले ने शीशे में से मुझे देखते हुए पूछा कि भिया, पहली बार आए हो क्या इंदौर। भाषा से तो तुम इधर के नहीं लगते हो।

मैंने कहा कि हाँ, मैं हैदराबाद से आया हूँ। यहाँ एक साल के लिए एक प्रोजेक्ट पर काम करना है।

ऑटो वाला बोला कि अरे खाओ ने भिया। हैदराबाद से आए हो। वो चारमीनार वाला शहर। पर देख लेना भिया, एक साल की बोल के आए हो, पर ये इंदौर का पानी ऐसा है ने कि तुम यहीं के होकर रह जाओगे। यहाँ जो एक बार आ गया, वो फिर कहीं का नहीं रहता। हमारा इंदौर सबको अपना बना लेता है। और कुछ हो न हो, यहाँ खाने का जो सुख है, वो दुनिया में कहीं नहीं मिलेगा। अभी राजवाड़ा पहुँचने दो, फिर देखना अपना शहर कैसा रंग दिखाता है।

उसकी बातें सुनकर मुझे लगा कि इस शहर के आम लोगों में भी अपने इतिहास और अपनी संस्कृति को लेकर एक गजब का गौरव है। वह अपने शहर की तारीफ ऐसे कर रहा था जैसे कोई पिता अपने सबसे होनहार बेटे की तारीफ करता है।

जब हमारा ऑटो आखिरी मोड़ मुड़कर राजवाड़ा के सामने जाकर रुका, तो मेरे पैर जैसे जमीन से चिपक गए। मैं स्तब्ध होकर उस विशाल, भव्य और

अद्भुत इमारत को देखता रह गया। सात मंजिला वह ऐतिहासिक महल, जिसका आधा हिस्सा पत्थरों से और आधा लकड़ियों से बना था, अपनी पूरी भव्यता के साथ सुबह की ताज़ा धूप में नहा रहा था। पत्थरों का निचला हिस्सा ऐसा मजबूत था मानो कह रहा हो कि हमने समय के थपेड़ों को झेला है और ऊपर की लकड़ियों की नक्काशी इतनी महीन थी मानो किसी कवि ने लकड़ी पर अपनी कविता लिख दी हो। उसे देखकर लगा कि इतिहास और आधुनिकता दोनों हाथ मिलाकर यहाँ की सड़क पर सरेआम नाच रहे हैं। सामने की सड़क पर आधुनिक गाड़ियाँ, लोडिंग ऑटो और बाइक्स फर्राटे भर रही थीं और ठीक पीछे वह सदियों पुराना गवाह शांत खड़ा था, जिसने न जाने कितने राजाओं का उत्थान देखा था, कितने युद्धों की धूल देखी थी और कितने त्योहारों के रंग देखे थे।

राजवाड़ा की उन विशाल और भारी दीवारों पर सदियों की अनकही कहानियाँ लिखी थीं। पत्थरों की दरारों को देखकर ऐसा लगता था जैसे वे आज भी रानी अहिल्याबाई होलकर के न्याय, उनकी उदारता और उनके त्याग के किस्से सुना रही हों। महल के ठीक सामने अहिल्या माता की प्रतिमा स्थापित थी। उनके एक हाथ में शिवलिंग था और चेहरे पर एक अलौकिक तेज के साथ–साथ एक अद्भुत ममता का भाव था। वह रूप ऐसा था जिसे देखकर भीतर का सारा अहंकार पल भर में समाप्त हो जाए। मैंने मन ही मन उन्हें प्रणाम किया और महसूस किया कि जिस शहर की संरक्षक ऐसी माता हो, वहाँ कदम रखने वाला कोई भी इंसान कभी भूखा या बेसहारा नहीं रह सकता।

ऑटो वाले ने सामान नीचे उतारा और बोला कि लो भिया, आ गया तुम्हारा राजवाड़ा। अब आराम से जाओ और हाथ–मुंह धोकर सबसे पहले पोहे–जलेबी का आनंद लो। उसके बिना इंदौर की सुबह अधूरी है।

मैंने उसे पैसे दिए, तो उसने मुस्कुराकर पैसे जेब में रखे और सिर झुकाकर बोला कि भिया राम । कोई भी काम पड़े तो याद करना। अपना नाम कान्हा है। इसी स्टैंड पर मिलूँगा।

कान्हा का वह राम कहना मेरे दिल को छू गया। मैं अपना सूटकेस खींचते हुए गेस्ट हाउस की तरफ बढ़ने लगा, लेकिन मेरी आँखें अभी भी आसपास के माहौल को सोखने में लगी थीं। सड़क पर घूमते हुए मेरे कानों में इन्दौरी बोली की अपनी एक अलग ही लय गूँज रही थी। यहाँ की भाषा में शब्दों को खींचने का, उन्हें एक नया मोड़ देने का जो अनूठा अंदाज था, वह किसी मधुर लोकगीत से कम नहीं लग रहा था। हर बात के अंत में आने वाला वो नी, खाओ ने और बड़े सिर्फ शब्द नहीं थे, बल्कि वे इस शहर के लोगों का दिल जीतने का जादुई मंत्र थे।

पास ही एक चाय वाले की दुकान थी जहाँ एक बड़ा सा रेडियो बज रहा था और उस पर पुराना फिल्मी गाना चल रहा था। दुकान के बाहर लकड़ी के बेंच पर दो बुजुर्ग बैठे थे। दोनों के सिर पर सफ़ेद बाल थे, चेहरे पर झुर्रियां थीं, लेकिन आँखों की चमक गवाही दे रही थी कि उन्होंने इंदौर को बदलते हुए देखा है। एक बुजुर्ग ने अपनी चश्मा नाक पर थोड़ा नीचे खिसकाते हुए दूसरे से कहा कि अरे बड़े, आज तो पोहे में वो दम नहीं दिख रहा है यार, थोड़ा जीरावन और डलवाते क्या। उस भट्टी वाले ने कंजूसी कर दी आज।

दूसरे बुजुर्ग ने अपनी चाय की चुस्की ली, प्लेट में रखी जलेबी का एक टुकड़ा तोड़ा और बोले कि अरे तुम भी क्या बात करते हो भिया। आनंद लो ने यार। सुबह–सुबह का टाइम है, माई की कृपा है कि अपने हाथ में चाय का गिलास है और सामने राजवाड़ा है। अब पोहे में दम ढूँढने बैठोगे तो जिंदगी का मजा कब लोगे। खाओ ने चुपचाप।

उनका यह संवाद सुनकर मेरे चेहरे पर खुद–ब–खुद एक गहरी मुस्कान तैर गयी। मुझे लगा कि डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा के रूप में मेरी जो पहचान अब तक हैदराबाद की गलियों, बड़ी–बड़ी लाइब्रेरी की किताबों और फाइलों के पन्नों तक सीमित थी, वह अब इस खुले आसमान के नीचे, इस इन्दौरी मिजाज के बीच एक नया आकार लेने वाली है। यह शहर सिर्फ एक साल के काम का एक पड़ाव नहीं था, बल्कि यह मेरी आत्मा का एक नया आशियाना बनने जा रहा था। यहाँ की मिट्टी में कुछ ऐसा था जो आपको अपनी जड़ें भूलने नहीं देता था, बल्कि उनमें एक नया पानी डाल देता था।

मैंने अपना सामान संभाला और गेस्ट हाउस के मुख्य दरवाजे के भीतर कदम रखा। सूरज अब पूरी तरह से आसमान पर अपनी सल्तनत कायम कर चुका था और उसकी सुनहरी किरणें राजवाड़ा के सबसे ऊपरी कंगूरों को चूम रही थीं। हवा में अब पोहे की सोंधी खुशबू, जलेबी की मिठास और जीरावन का तीखापन और ज्यादा गहरा हो गया था। मुझे साफ लगने लगा था कि एक साल का यह सफर, जो आज इस अलसायी सुबह से शुरू हो रहा है, मेरे जीवन की किताब का सबसे खूबसूरत, सबसे जीवंत और सबसे भावुक पन्ना साबित होने वाला है। मन का वह सुबह वाला डर अब पूरी तरह से गायब हो चुका था और उसकी जगह एक नए कौतूहल, एक नई उमंग ने ले ली थी। मैं इस अहिल्या नगरी को अपने भीतर समेटने के लिए पूरी तरह तैयार था और यह शहर भी अपनी दोनों बाहें फैलाए, अपनी अनोखी बोली के साथ मेरा स्वागत कर रहा था।

2
पीतल की चाबी, कोरी दीवारें और टपरी से आती तन्हाई की खुशबू
इंदूर की हवा ठंडी, जोशी जी के कायदे गर्म!

एक नए और अनजान शहर में अपने लिए सिर छुपाने की जगह ढूँढना किसी बड़ी जंग को जीतने जैसा होता है। जब आप अपने शहर की माटी छोड़कर, अपनी जड़ों को पीछे छोड़कर किसी दूसरी जगह सिर्फ एक साल का ठिकाना बनाने निकलते हैं, तो हर गली एक पहेली जैसी लगती है और हर अनजान चेहरा एक सवालिया निशान बनकर आपके सामने खड़ा हो जाता है। हैदराबाद की उन जानी पहचानी सड़कों से निकलकर जब मैं इंदौर की गलियों में भटक रहा था, तो मेरे हाथ में एक छोटा सा कागज़ था जिस पर कुछ इलाकों के नाम लिखे थे। दोपहर की धूप अब मालवा के आसमान पर तीखी होने लगी थी और मेरे माथे से पसीने की बूंदें टपककर उस कागज़ पर गिर रही थीं, जिससे लिखे हुए अक्षर थोड़े धुंधले पड़ रहे थे। मुझ जैसे सीधे–साधे और साहित्य की दुनिया में रमे रहने वाले इंसान के लिए यह प्रक्रिया किसी अग्निपरीक्षा से कम नहीं थी। मुझे दुनियादारी के दांव–पेंच नहीं आते थे, न ही मैं मोल–तोल करने में माहिर था। मैं तो बस लोगों की आँखों में ईमानदारी और उनकी बातों में इंसानियत ढूँढने का आदी था, लेकिन जमीन की हकीकत हमेशा किताबों के पन्नों जैसी खूबसूरत नहीं होती।

मैं सुबह से ही खातीपुरा, जूनी इंदौर और राजवाड़ा के आसपास की तंग गलियों के चक्कर काट रहा था। हर मोड़ पर एक जैसी दिखने वाली इमारतें थीं, हर घर के बाहर लगी नामपट्टिका मुझे चिढ़ा रही थी। कुछ जगहों पर मकान खाली है का बोर्ड तो टंगा था, लेकिन जैसे ही मैं भीतर कदम रखता, वहाँ के लोग मुझे किसी अजनबी संशय के साथ देखने लगते। कोई पूछता कि भिया अकेले रहोगे क्या, कोई पूछता कि क्या काम करते हो, तो कोई सीधे ही शाकाहारी और मांसाहारी का लंबा चौड़ा घोषणापत्र मेरे सामने रख देता। मेरी थकान अब पैर की उंगलियों से होती हुई सिर के ऊपर तक पहुँच चुकी थी। कंधे पर लटका हुआ झोला अब किसी बड़े पत्थर की तरह भारी लगने लगा था। पैरों में छाले पड़ने की नौबत आ गई थी और मन कर रहा था कि सब कुछ छोड़कर वापस अपनी दक्खिनी दुनिया में लौट जाऊँ। तभी एक संकरी सी गली के

आखिरी छोर पर मुझे एक पुराना, दुमंजिला मकान दिखाई दिया। मकान की दीवारें हल्के पीले रंग की थीं, जिन पर समय की मार साफ़ देखी जा सकती थी। मुख्य दरवाजे पर एक बड़ा सा ताले का कुंडा लगा था और पास ही एक छोटी सी खिड़की खुली थी, जिसके भीतर से एक बुजुर्ग इंसान अखबार पढ़ते हुए दिखाई दे रहे थे।

मैंने अपनी हिम्मत बटोरी, सूखे हुए गले को साफ़ किया और उस घर के दरवाजे पर अपनी उंगलियों से हल्की सी थाप दी। अखबार के पीछे से दो बेहद तीखी, पारखी और कड़क आँखें बाहर निकलीं। उन्होंने चश्मे को अपनी नाक के पुल पर थोड़ा नीचे खिसकाया और मुझे ऊपर से नीचे तक ऐसे देखा मानो कोई जौहरी किसी पत्थर की असलियत परख रहा हो। वह इस मकान के मालिक थे, जिन्हें आस–पड़ोस के लोग जोशी जी कहकर पुकारते थे। उनका स्वभाव पहली ही मुलाकात में मुझे किसी कच्चे नारियल जैसा सख्त और कड़ा लगा। उनके चेहरे पर झुर्रियों का एक पूरा जाल था, लेकिन उनकी रीढ़ की हड्डी अभी भी एकदम सीधी थी, जो उनके भीतर के कड़े अनुशासन की गवाही दे रही थी। उन्होंने बिना किसी भूमिका के, अपनी भारी और रौबीली आवाज में मुझसे पूछा कि हाँ भिया, किससे मिलना है और यहाँ गली में क्या ढूँढ रहे हो।

मैंने बड़े ही अदब के साथ अपने हाथ जोड़े और कहा कि बाबूजी, मेरा नाम सुरेश कुमार मिश्रा है। मैं हैदराबाद से यहाँ आया हूँ और एक साल के लिए मुझे इंदौर में रहना है। क्या आपके यहाँ कोई कमरा किराए के लिए खाली मिल सकता है।

मेरी बात सुनकर जोशी जी ने अखबार को पूरी तरह से समेटकर मेज पर रख दिया। उन्होंने मुझे एक बार फिर घूरकर देखा, फिर बोले कि कमरा तो खाली है बड़े, लेकिन हमारे यहाँ के नियम बहुत पक्के हैं। इंदौर की हवा जितनी ठंडी है, मेरे घर के कायदे उतने ही गर्म हैं। अगर उन कायदों में रह सको, तो ही आगे की बात करना, नहीं तो गली के बाहर जाने का रास्ता बहुत सीधा है।

मैंने गहरी सांस ली और कहा कि आप नियम बताइए बाबूजी, मैं एक सीधा–साधा लेखक हूँ, नियमों का पालन करना मेरी आदत में शामिल है।

जोशी जी ने अपनी उंगली हवा में उठाई और एक–एक करके दस तरह के नियम गिनाना शुरू कर दिए। उनका पहला नियम था कि सुबह ठीक छह बजे मुख्य दरवाजा खुल जाएगा और रात को ठीक नौ बजे ताला लग जाएगा, उसके बाद चाहे कलेक्टर भी आ जाए, दरवाजा नहीं खुलेगा। दूसरा नियम था कि कमरे में कोई फालतू का शोर–शराबा नहीं होगा, कोई दोस्त–यार आकर रात को महफिल नहीं जमाएगा। तीसरा नियम पानी को लेकर था कि मालवा में पानी

की कीमत सोने जैसी है, नल खुला छोड़ा तो उसी दिन कमरा खाली करवा लूँगा। इसके बाद बिजली की बचत, साफ–सफाई, बाहरी लोगों का आना–जाना और न जाने क्या–क्या शर्तें उन्होंने मेरे सामने रख दीं। उनकी बातें सुनकर ऐसा लग रहा था मानो मैं किसी किराए के कमरे में नहीं, बल्कि किसी अंतरराष्ट्रीय सीमा पर सुरक्षा बल के शिविर में रहने जा रहा हूँ। हर नियम के साथ मेरा दिल थोड़ा और बैठने लगा था। मुझे लग रहा था कि यहाँ रहना मेरे स्वभाव के विपरीत होगा, जहाँ स्वतंत्रता की जगह सिर्फ बंदिशें होंगी।

मैं चुपचाप उनकी सारी शर्तें सुनता रहा, बिना किसी प्रतिवाद के। जब वे अपनी लंबी फेहरिस्त पूरी कर चुके, तो उन्होंने मेरी तरफ देखा और पूछा कि क्यों भिया, मंजूर हैं सब बातें, या कोई आपत्ति है।

मैंने अपने चेहरे पर एक फीकी सी मुस्कान लाते हुए कहा कि बाबूजी, मुझे आपकी सारी शर्तें मंजूर हैं। मुझे तो बस एक शांत कोना चाहिए जहाँ मैं अपने काम के बाद चौन से बैठकर कुछ लिख सकूं और सो सकूं।

मेरी इस सहज स्वीकारोक्ति ने शायद जोशी जी के भीतर के कड़े कवच को थोड़ा सा हिला दिया। उन्होंने मेरी आँखों में झांका, जहाँ थकान और सच्चाई साफ तैर रही थी। अचानक उनके चेहरे के सख्त भाव कुछ ऐसे पिघले मानो कड़ी धूप के बाद बर्फ की कोई सिल्ली धीरे–धीरे पानी बनने लगी हो। उन्होंने अपनी दराज से एक भारी, पीतल की चाबी निकाली। वह चाबी सिर्फ एक धातु का टुकड़ा नहीं थी, बल्कि वह उस घर के भरोसे का प्रतीक थी। उन्होंने वह चाबी मेरे हाथों में थमाई और जैसे ही उनके हाथ की त्वचा मेरे हाथ से छुई, मुझे लगा कि उनकी हथेलियाँ बहुत गर्म और वात्सल्य से भरी थीं। उनके चेहरे पर एक बुजुर्गवार जैसी गहरी आत्मीयता तैर गई। उन्होंने बेहद धीमे और बदले हुए स्वर में कहा कि सुनो भिया, नियम तो दुनिया के लिए हैं ताकि व्यवस्था बनी रहे। जब तुम इतनी दूर से अपना घर छोड़कर यहाँ आए हो, तो तुम सिर्फ एक किराएदार नहीं हो। ऊपर जाओ, कमरा देखो, अगर कोई चीज कम लगे तो नीचे आकर सीधे अपनी काकी से बोल देना। भूखे पेट मत रहना, इंदौर में पेट खाली रहे तो माई अहिल्या नाराज होती हैं।

उनकी इस अचानक बदली हुई आत्मीयता ने मेरे भीतर तक एक अजीब सी सिहरन पैदा कर दी। मुझे समझ आया कि मालवा के लोग ऊपर से चाहे जितने कड़े दिखें, भीतर से उनके दिल में एक ऐसी मिठास होती है जो किसी भी अजनबी को पल भर में अपना बना लेती है। मैं सीढ़ियों की तरफ बढ़ा, जहाँ हर कदम के साथ एक पुराना अहसास गूँज रहा था। कमरा दुमंजिले पर था। जैसे ही मैंने उस भारी पीतल की चाबी को ताले के भीतर डाला और उसे घुमाया,

एक खट की आवाज हुई जो उस सूने मकान में बहुत देर तक गूँजती रही। दरवाजा खुला और भीतर की ठंडी, शांत और धूल भरी हवा ने मेरा स्वागत किया। कमरा बहुत बड़ा नहीं था, लेकिन उसमें एक सादगी थी। एक तरफ लोहे का एक छोटा सा पलंग था, एक लकड़ी की पुरानी मेज और कुर्सी थी और कोने में एक घड़ा रखने का स्टैंड बना हुआ था।

मैंने अपना भारी सूटकेस फर्श पर रख दिया। सूटकेस के गिरते ही कमरे में जमी थोड़ी सी धूल हवा में उड़ने लगी, जो सूरज की तीखी किरणों के बीच तैरती हुई साफ़ दिखाई दे रही थी। मैं थका हुआ था, फिर भी सबसे पहले मैं कमरे की उस छोटी सी खिड़की की तरफ बढ़ा जो गली की तरफ खुलती थी। खिड़की के किवाड़ बरसों पुराने थे, जिन्हें खोलते ही एक चीं की आवाज हुई, मानो वे भी इस नए मेहमान से अपनी शिकायत दर्ज करा रहे हों। जैसे ही मैंने वह खिड़की पूरी तरह से खोली, ठीक सामने की टपरी से आती पहली चाय की ताज़ा खुशबू ने कमरे के भीतर प्रवेश किया। वह खुशबू सिर्फ उबलती हुई चायपत्ती की नहीं थी, बल्कि उसमें कुचले हुए अदरक का तीखापन, हरी इलायची की महक और खौलते हुए दूध का एक ऐसा सोंधापन घुला था जो सीधे आत्मा को तृप्त कर दे।

उस खुशबू के कमरे में आते ही, मेरे भीतर छिपे बैठे अकेलेपन ने बहुत धीरे से दस्तक दी। जब आप किसी नए स्थान पर अपनी पहली शाम बिताते हैं, तो वह समय सबसे ज्यादा भारी होता है। चारों तरफ उजाला तो होता है, लेकिन वह उजाला आपका अपना नहीं होता। मैंने खिड़की से बाहर सिर निकालकर देखा। आसमान में सूरज अब डूबने की तैयारी कर रहा था और उसकी ढलती हुई नारंगी रोशनी इंदौर की अजनबी छतों पर बिखर रही थी। कहीं किसी छत पर कपड़े सूख रहे थे, कहीं कोई बच्चा पतंग उड़ाने की नाकाम कोशिश कर रहा था, तो कहीं किसी रसोई से बर्तनों के टकराने की आवाजें आ रही थीं। वह पूरा नजारा एक सजीव सिनेमा जैसा था, लेकिन उस सिनेमा में मेरा कोई किरदार नहीं था। मैं सिर्फ एक दर्शक था, जो एक छोटी सी खिड़की के फ्रेम में बंद होकर उस अजनबी दुनिया को देख रहा था।

मैं वापस आकर उस पलंग पर बैठ गया। कमरे की दीवारें एकदम कोरी थीं, जिन पर न तो कोई तस्वीर थी और न ही कोई कैलेंडर। उस सूनेपन के बीच मुझे हैदराबाद का अपना आशियाना याद आने लगा, जहाँ इस वक्त तक चाय की टेबल पर बातचीत का एक लंबा दौर शुरू हो जाता था। यहाँ केवल मैं था, मेरी तन्हाई थी और खिड़की के बाहर से आती शहर की बेगानी आवाजें थीं। अकेलापन किसी कीड़े की तरह मन की दीवारों को कुतरने लगा था। आँखें थोड़ी

नम होने लगी थीं और गले में एक अजीब सा संकोच फंस गया था। तभी मुझे महसूस हुआ कि यह अकेलापन ही तो एक लेखक की सबसे बड़ी पूंजी होता है। जब तक आप खुद से नहीं मिलते, तब तक आप समाज को कोई नई दृष्टि नहीं दे सकते।

मैंने गहरी सांस ली और खिड़की के बाहर देखने लगा, जहाँ अब नीचे उस चाय की टपरी पर भीड़ बढ़ने लगी थी। लोग ऑफिस से लौट रहे थे, गाड़ियों को रोककर चाय के गिलास हाथ में थाम रहे थे और आपस में इन्दौरी लहजे में दिन भर का हिसाब–किताब साझा कर रहे थे। उस टपरी वाले का हाथ बड़ी तेजी से चल रहा था, वह कुल्हड़ में चाय छान रहा था और हर ग्राहक को बड़े सम्मान से भिया कहकर संबोधित कर रहा था। मुझे लगा कि भले ही आज मैं इस कमरे में अकेला बैठा हूँ, भले ही यह रात मेरे लिए लंबी होने वाली है, लेकिन इस खिड़की से आने वाली चाय की खुशबू और सामने दिखने वाला यह इंसानी हुजूम मुझे ज्यादा दिनों तक पराया नहीं रहने देगा। यह शहर धीरे–धीरे मुझे अपनी आगोश में ले रहा था और मैं भी अपनी तमाम तन्हाइयों के बावजूद, इस नए आशियाने को अपना मानने के लिए मजबूर हो रहा था। मन की वह आह जो अकेलेपन से निकली थी, अब धीरे–धीरे एक अद्भुत संतोष में बदल रही थी कि जिंदगी ने मुझे एक नए अनुभव के धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया है।

हिंदी साहित्य के शिखर पुरुष आदरणीय विनोद कुमार शुक्ल जी के अनमोल आशीर्वचन से सुशोभित, भावनाओं को भीतर तक झकझोरती इस 200 पन्नों की संपूर्ण पुस्तक को पढ़ने या क्रय करने के लिए आपका सहृदय स्वागत है।

साहित्य की इस अनूठी यात्रा का हिस्सा बनने और अपनी प्रति प्राप्त करने के लिए कृपया आज ही संपर्क करें:

फोन: **73 8657 8657**

ईमेल:

drskm786@gmail.com

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

'उरतृप्त' उपनाम से साहित्य जगत में प्रसिद्ध डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा अपनी भावनाओं और विचारों को अत्यंत ईमानदारी और गहराई से अभिव्यक्त करते हैं। उनकी बहुमुखी प्रतिभा का प्रमाण उनके लेखन के विभिन्न क्षेत्रों में उनके योगदान से मिलता है। वे न केवल एक प्रसिद्ध व्यंग्यकार हैं, बल्कि एक कवि, संस्मरणकार और बाल साहित्य लेखक भी हैं। उनके व्यंग्य लेखन ने उन्हें एक विशेष पहचान दिलाई है। उनका व्यंग्य 'शिक्षक की मौत' साहित्य आजतक चैनल पर अत्यधिक वायरल हुआ, जिसे लगभग दस लाख से अधिक बार पढ़ा और देखा गया, जो हिंदी व्यंग्य के इतिहास में एक अभूतपूर्व कीर्तिमान है। उनका व्यंग्य-संग्रह 'एक तिनका इक्यावन आँखें' भी काफी प्रसिद्ध है, जिसमें उनकी कालजयी रचना 'किताबों की अंतिम यात्रा' शामिल है। इसके अतिरिक्त 'म्यान एक, तलवार अनेक', 'गपोड़ी अड्डा', 'सब रंग में मेरे रंग' भी उनके प्रसिद्ध व्यंग्य संग्रह हैं। 'इधर-उधर के बीच में' तीसरी दुनिया को लेकर लिखा गया अपनी तरह का पहला और अनोखा व्यंग्य उपन्यास है। साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदान को तेलंगाना हिंदी अकादमी, तेलंगाना सरकार द्वारा श्रेष्ठ नवयुवा रचनाकार सम्मान, 2021 मुख्यमंत्री के. चंद्रशेखर राव के हाथों से सम्मानित किया गया है। राजस्थान बाल साहित्य अकादमी के द्वारा (मुख्यमंत्री अशोक गहलोत के करकमलों से) उनकी बाल साहित्य पुस्तक 'नन्हों का सृजन आसमान' के लिए उन्हें सम्मानित किया गया है। इनके अलावा, उन्हें व्यंग्य यात्रा रवींद्रनाथ त्यागी सोपान सम्मान और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के हाथों साहित्य सृजन सम्मान भी प्राप्त हो चुका है। डा. उरतृप्त ने तेलंगाना सरकार के लिए प्राथमिक स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर पर कुल 55 पुस्तकों को लिखने, संपादन करने और समन्वय करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । उरतृप्त ने अब तक नौ व्यंग्य संग्रह, पाँच कहानी संग्रह, पाँच कविता संग्रह, दो उपन्यास लिख चुके हैं। बिहार, छत्तीसगढ़, तेलंगाना की विश्वविद्यालयी पाठ्य पुस्तकों में उनके योगदान को रेखांकित किया गया है। कई पाठ्यक्रमों में उनकी व्यंग्य रचनाओं को स्थान दिया गया है। उनका यह सम्मान दर्शाता है कि युवा पाठक गुणवत्तापूर्ण और प्रभावी लेखन की पहचान कर सकते हैं।

V.P. Publishers & Distributors
W-2, 862 Basant Vihar, Naubasta
Kanpur - 208021

₹399/-
ISBN : 978-93-84120-62-7
9 789384 120627

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

समय की रेत पर इंदौरी यादें ■ डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

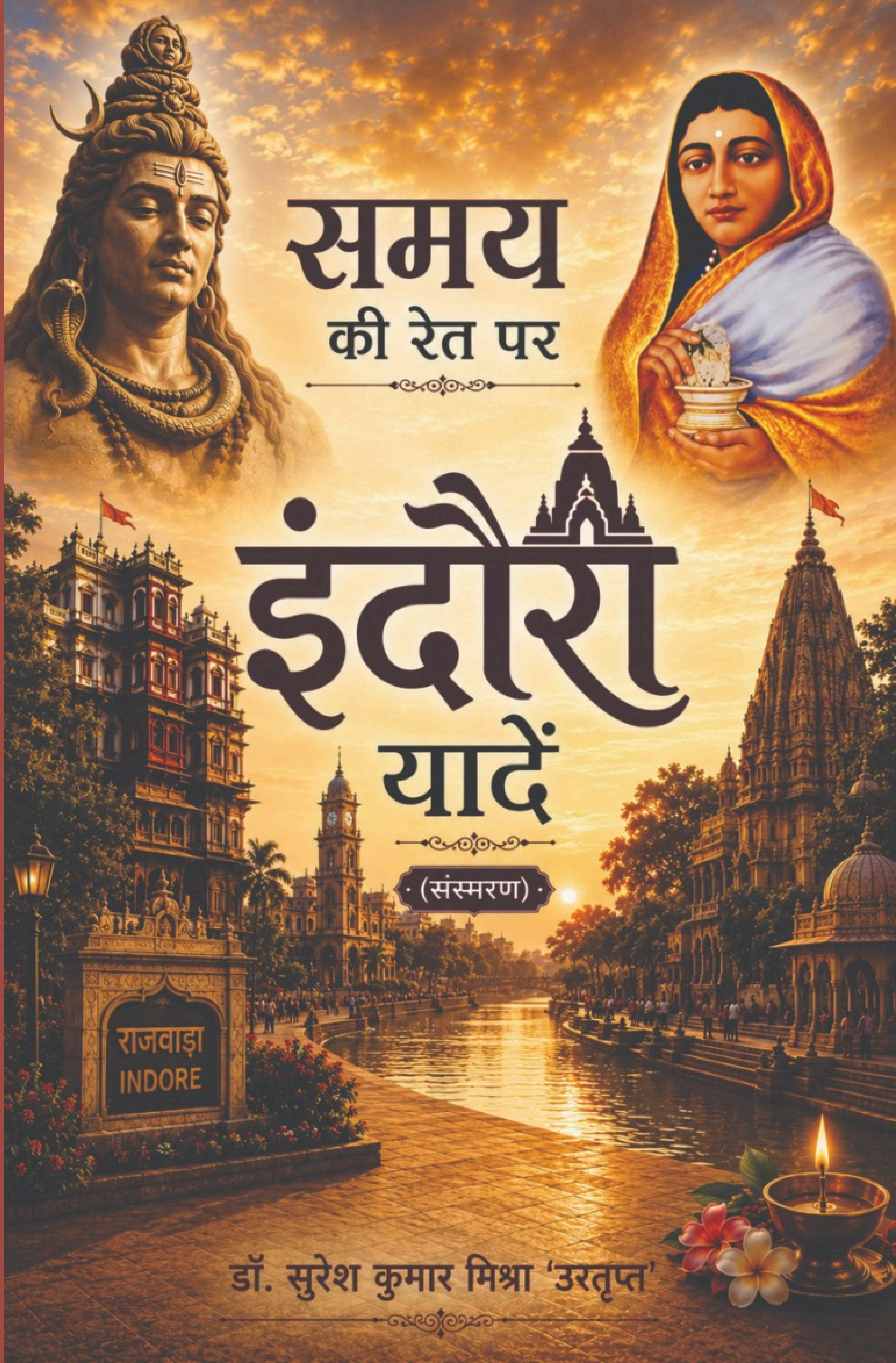

समय की रेत पर इंदौरी यादें

(संस्मरण)

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'